JULY -2023

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

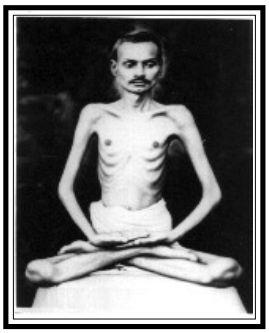

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३४८

बंबई, चैत्र सुदी २, बुध, १९४८

नमस्कार पहुँचे।

यह लोकस्थिति ही ऐसी है कि उसमें सत्यकी भावना करना परम विकट है। सभी रचना असत्यके आग्रहकी भावना करानेवाली है।

*

पत्रांक ३४९

नमस्कार पहुँचे।

लोकस्थिति आश्चर्यकारक है।

*

पत्रांक ३५०

बंबई, चैत्र सुदी ६, रवि, १९४८

ज्ञानीको सर्वसंग परित्याग करनेका क्या हेतु होगा?

प्रणाम प्राप्त हो।

*

पत्रांक ३५१

बंबई, चैत्र सुदी ९, बुध, १९४८

बाह्योपाधि प्रसंग रहता है ।

यथासम्भव सद्विचारका परिचय हो, ऐसा करनेके लिये उपाधिमें उलझे रहनेसे योग्यरूपसे प्रवृत्ति नहीं हो सकती, इस बातको ध्यानमें रखने योग्य ज्ञानियोंने जाना है।

प्रणाम।

*

पत्रांक ३५२

बंबई, चैत्र सुदी ९, बुध, १९४८

शुभोपमायोग्य मेहता श्री ५ चत्रभुज बेचर,

आपने अभी सभीसे कंटाला आनेके बारेमें जो लिखा है उसे पढ़कर खेद हुआ । मेरा विचार तो ऐसा रहता है कि यथासम्भव वैसे कंटालेका शमन करें और उसे सहन करें।

किन्हीं दु:खके प्रसंगोंमें ऐसा हो जाता है और उसके कारण वैराग्य भी रहता है, परंतु जीवका सच्चा कल्याण और सुख तो यों मालूम होता है कि उस सब कंटालेका कारण अपना उपार्जित प्रारब्ध है, जो भोगे बिना निवृत्त नहीं होता, और उसे समतासे भोगना योग्य है। इसलिये मनके कंटालेको यथाशक्ति शांत करें और उपार्जित न किये हुए कर्म भोगनेमें नहीं आते, ऐसा समझकर दूसरे किसीके प्रति दोषदृष्टि करनेकी वृत्तिको यथाशक्ति शांत करके समतासे प्रवृत्ति करना योग्य लगता है, और यही जीवको कर्तव्य है।

लि. रायचंदके प्रणाम।

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०७, वर्ष-२५, जुलाई-२०२३

श्रावण शुक्ल ४, शुक्रवार, दि. २२-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-९७,९८ प्रवचन-४१

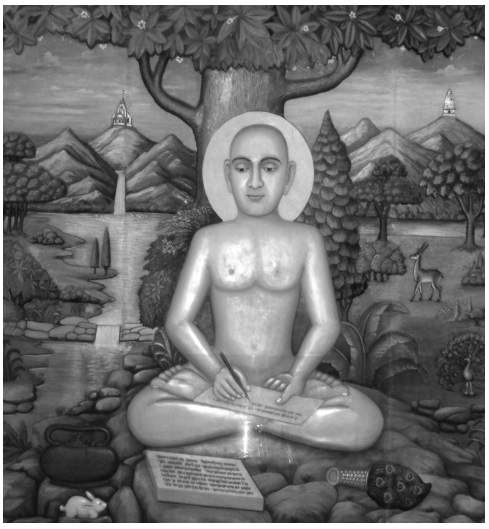

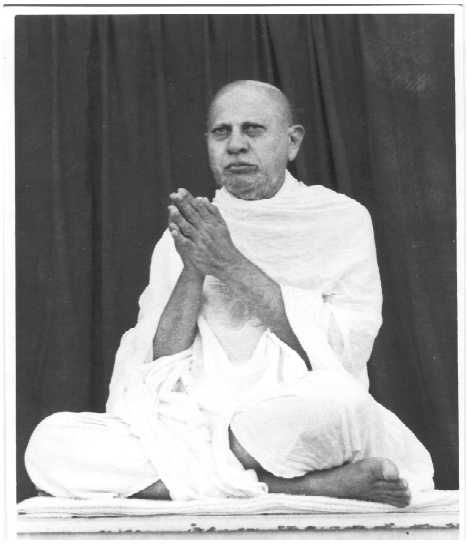

आत्मध्यान के चार प्रकार

जो पिंडत्थु बुह रूवत्थु वि जिण उत्तु।
रूवातीततु मुणेहि लहु जिम परू होहि पवित्तु।। ९८।।

जो पिण्डस्थ पदस्थ अरु रूपस्थ रूपातीत।
जानों ध्यान जिनोक्त ये, होवो शीघ्र पवित्र।।

अन्वयार्थ - (बुह) हे पण्डित! (जिण-उत्तु जे पिंडस्थु पयत्थु रूवत्थु मुणेहि) जिनेन्द्र द्वारा कहे गये पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ व रूपातीत ध्यान हैं, उनका मनन कर (जिम लहु परु होहि) जिससे तू शीघ्र ही परम पवित्र हो जावे।

९८ आत्मध्यान के चार प्रकार। ज्ञानार्णव में आते हैं न?

जो पिंडत्थु बुह रूवत्थु वि जिण उत्तु।
रूवातीततु मुणेहि लहु जिम परू होहि पवित्तु।। ९८।।

हे पण्डित! '**बुह**' शब्द प्रयोग किया है। हे पण्डित! पण्डित तो उसे कहते हैं। आहा...हा...! जो इन चार प्रकार के ध्यानवाले आत्मा के आनन्द में एकाग्र होकर आत्मानुभव करे, उसे यहाँ पण्डित कहा जाता है। आहा...हा...! आता है न पाहुड़ में, नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में भी आता है। हे पाण्डे... हे पाण्डे... हे पाण्डे...! तुस कूट रहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक, है? दोहापाहुड़ में। यह श्लोक दोहापाहुड़ का है। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने पहले अधिकार में लिया है। पाण्डे... पाण्डे... पाण्डे...! तीन बार लिया अर्थात् कि मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, और मिथ्या - राग-

द्वेष, तुस कूटता है, बापा! यह माल अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी तुझे प्रतीति नहीं, उसका विश्वास नहीं, उसका ज्ञान नहीं और उसमें रमणता नहीं और तू दूसरी बातें करता है, ऐसा होता है और वैसा होता है और करा भोजन, लाखों लोगों को (कहे), ऐसा होता है, अमुक होता है, व्यवहार करते-करते होता है, राग करते-करते होता है, पहले ऐसा का ऐसा आता होगा कोई? आहा...हा...! अब कुछ मार्ग आया। यह कहते हैं, बापू! व्यवहार विकल्प को छोड़ने पर दृष्टि का अनुभव होता है। समझ में आया? ऐसा कठिन लगे इस तरह। अन्दर मार्ग देखा नहीं और मार्ग में चलने का पुरुषार्थ चाहिए, वह भी तैयार नहीं। आहा...हा...! कषाय मन्द करो, व्यवहार करो, और व्यवहार करते-करते व्यवहार के फलरूप में तुम्हें निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट होगा (- ऐसा अज्ञानी कहते हैं)।

मुमुक्षु - बारहवीं गाथा में लिखा है।

उत्तर - बारहवीं गाथा में लिखा नहीं। लिखा...! उसका अर्थ ही इसे नहीं आता।

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। १२।।

अरे... इसका अर्थ दूसरा है। अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका तो देख! यह तो सम्यक् अनुभव - दृष्टि हुई है, आत्मा का ज्ञान हुआ है, स्वरूप की स्थिरता भी कितनी ही हुई है परन्तु अभी अवस्था में राग, व्यवहार बाकी है। शुद्धता आंशिक... आंशिक बढ़ती जाए, अशुद्धता घटे, उसका ज्ञान करना, वह जाना हुआ प्रयोजनवान् है, उसका नाम व्यवहार है। व्यवहार करना और उसे व्यवहार का उपदेश देना, यह बात ही वहाँ नहीं है। समझ में आया? क्या हो परन्तु अब?

जिस दृष्टि से कहा गया है, उस दृष्टि से न देखें तो उसका अर्थ भासित नहीं होता। आचार्य की जो दृष्टि थी कि '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भगवान आत्मा भूतार्थस्वरूप, एकाकार आनन्दकन्द का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। यह तो निश्चय बात सिद्ध की। तब अब यहाँ कुछ व्यवहार बाकी है, या अकेला निश्चय हो गया? इसलिए बारहवीं गाथा में लिया, बाकी है। अभी अशुद्धता है, राग है; पर्याय में पूर्ण शुद्धता नहीं है, उस गुणस्थान के भेद का भलीभाँति उस-उस काल में ज्ञान करना, वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ प्रयोजन है; इसलिए बारहवीं में वह डाला है, ग्यारहवीं की सन्धिरूप में बारहवीं में (डाला है)। बस! भूतार्थ का आश्रय हो गया तो हो गया केवली? नहीं, नहीं; अभी बाकी है, उसे पुरुषार्थ करना बाकी है, इसलिए जितनी शुद्धता प्रगट हुई, अशुद्धता रही, उसका ज्ञान करना है। समझ में आया? और वह शुद्धता पूर्ण करने के लिए स्व का आश्रय लेना पड़ेगा। इस प्रकार साथ में व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। आहा...हा...! परन्तु क्या हो? भाई! यह किसी को दे दें ऐसा है? इसके घर की चीज है, यह ले तब हो - ऐसा है।

कहते हैं कि हे पण्डित जिनेन्द्र द्वारा कहे गये जो.... है न? '**जिण उत्तु**' वीतराग भगवान ने यह चार ध्यान कहे हैं। उनके द्वारा, पिण्डस्थ, पदस्थ.... पिण्डस्थ अर्थात् इस शरीर में रहा हुआ भगवान। पिण्ड अर्थात् शरीर में रहा हुआ भगवान, उसका विचार, ध्यान करना। पदस्थ अर्थात् पाँच पद में स्थित - अरिहन्त, सिद्ध आदि का विचार करके अन्तर में ध्यान करना। रूपस्थ (अर्थात्) अरिहन्त के अकेले के रूप में स्थित शरीर, उसका ध्यान और रूपातीत (अर्थात्) सिद्ध का। उनका विचार करके... है परद्रव्य, परन्तु फिर भी उनका विचार (करके) अन्दर में जाना, यह उसका परिणाम-फल है। समझ में आया?

उनका मनन कर... '**जिम लहु परु पवित्तु होहि**।' जिससे '**लहु**' अर्थात् शीघ्र तू पवित्र हो जाएगा, भाई! तेरे स्वरूप में अन्तर एकाग्र होने से तू अल्प काल में परमात्मा हो जाएगा। तुझे अल्प काल में सिद्धपद मिलेगा परन्तु इस पवित्रता के ध्यान में कलावाले को मिलेगा। दूसरी कोई कला परमात्मपद को प्राप्त करने की नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

दृष्टान्त दिया है जैसे वस्त्र को ध्यानपूर्वक रगड़ने से मैल साफ होता है.... यह वस्त्र का दृष्टान्त है। इसी प्रकार अशुद्ध आत्मा... मलिनता है या नहीं दशा में? वह आत्मा की रगड़ता; रगड़ता अर्थात् आत्मा में एकाग्रता। उसके द्वारा शुद्ध हो जाता है। ज्ञानावरणीय की बात की है, यह व्याख्या दी है, वह तो ठीक है। यह संक्षिप्त अर्थ कर दिये और यह अन्तिम गाथा देखो! तत्त्वानुशासन में

येन भावेन यद्रूपं ध्यायत्यात्मानमात्मवित्।
तेन तन्मयतां याति सोपाधिः स्फटिको यथा।। १९१।।

जिस भाव से व जिस रूप से आत्मज्ञानी आत्मा को ध्याता है, उसी से वह तन्मय हो जाता है,....क्या कहा? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप और पूर्ण ज्ञानस्वरूप - ऐसे भाव से और ऐसे स्वरूप से उसका ध्यान करता है तो वह दशा उस भाव में तन्मय हो जाती है। भगवान आत्मा '**येन**' जिस भाव से और जिस स्वरूप से... भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्द है और ज्ञान की मूर्ति है - ऐसे भाव से और ऐसे रूप से जो उसे ध्याता है - ऐसा आत्मज्ञानी आत्मा को ध्याता है, उसी से वह तन्मय हो जाता है,.... तब वह वर्तमान दशा त्रिकालभाव के साथ एकमेक हो जाती है। आहा...हा...! समझ में आया?

जैसे रंग की उपाधि से स्फटिक पाषाण तन्मय हो जाता है। लो! यह तो दृष्टान्त दोनों के लिए, हाँ! स्फटिक पत्थर है और काला, लाल फूल हो तो उसकी दशा में भी वैसी झांईं होती है। निकल जाए तो सफेद झांईं होती है। तन्मय (हो जाता है) सफेद के साथ भी तन्मय है और लाल के साथ भी (तन्मय है)। पर्यायरूप से तन्मय है, लाल आदि से और स्वभावरूप हो तो स्वभाव श्वेत से तन्मय होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा.... है न प्रवचनसार में? शुभ-अशुभ और शुद्ध जिस भाव से परिणमे, उसमें तन्मय हो जाता है। प्रवचनसार। शुभ परिणमित, अशुभ परिणमित, शुद्ध परिणमित... भगवान आत्मा परिणमित होता है। पर्याय में परिणत होता है, शुभरूप भी परिणत होता है।

मुमुक्षु - स्फटिक लाल हो जाती है (या) नहीं होती?

उत्तर - नहीं, स्फटिक नहीं, उस प्रकार की पर्यायरूप हो जाती है, पर्यायरूप होती है। लाल-पीले की पर्यायरूप होती है, नहीं ऐसा नहीं। लकड़ी नहीं होती, उसे यदि ऐसा रखोगे तो नहीं होगी, क्योंकि उसकी पर्याय होने की योग्यता नहीं है और स्फटिक में वह अपनी योग्यता से होता है। उसमें योग्यता - उसकी स्वयं की पर्याय की योग्यता है। स्फटिक की वर्तमान पर्याय की स्वयं की योग्यता है। लकड़ी की योग्यता वर्तमान भी नहीं है और त्रिकाल भी नहीं है। यहाँ रखो तो नहीं होगी।

मुमुक्षु - स्फटिक में तो प्रतिभासता है।

उत्तर - है, परिणमन है। यहाँ पर तो पर्याय का परिणमन लेना है। फिर स्वभाव की अपेक्षा से, स्वभाव की दृष्टि से...।

मुमुक्षु - होवे वह प्रतिभासे।

उत्तर - प्रतिभासे। उसके अस्तित्व में है। स्फटिक की पर्याय के अस्तित्व में वह लाल-पीली (अवस्था) है। किसी के अस्तित्व के कारण किसी के अस्तित्व में नहीं। समझ में आया? यह वस्तु है, इससे यह दृष्टान्त दिया है। रंग-रूप परिणमे, वैसी उसकी पर्याय का धर्म है, लकड़ी का नहीं परन्तु उसका - स्फटिक का धर्म है।

जैसे लकड़ी है, देखो! यह छोटी हो, दियासलाई, बीड़ी पीते हो, वह लकड़ी यहाँ जलेगी परन्तु यहाँ गर्म नहीं होगा और लोहे का सरिया इतना होगा तो अग्नि में रखा होगा तो एक छोर यहाँ (तक) जायेगा। वह अग्नि के कारण नहीं, उसका स्वभाव है। लोहे का -उसका स्वभाव है। लकड़ी का ऐसा स्वभाव है। अग्नि तो दोनों को है। दियासलाई भी यहाँ है, बीड़ी पीते हैं न! इस ओर की लकड़ी गर्म होवे तो कोई बीड़ी नहीं पी सकता। लकड़ी का ऐसा स्वभाव है कि उष्णता यहाँ

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १८ पर..)

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१२८ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का कोयम्बतुर में हुआ प्रवचन दि: २६-१२-१९९७

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत, पत्र १२८ चल रहा है । परिभ्रमणकी चिंतना किस-किस, प्रकारसे होती है उसका अपने अनुभव से वर्णन कर रहे हैं। दूसरे पेरेग्राफसे (आगे लेते हैं)।

''और स्मरण होता है कि यह परिभ्रमण केवल स्वच्छंदसे करते हुए जीवको उदासीनता क्यों न आई?''

स्वच्छंद माने तीव्र रसवाला कषाय। वह भी स्वच्छंदका एक प्रकार है कि जिसमें कोई हिचकिचाहट नहीं होती - without hesitation (बिना हिचकिचाहट) लौकिक प्रवृत्तिमें तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभके परिणाम होते हैं उसको स्वच्छंद कहते हैं। धार्मिक प्रवृत्तिमें ज्ञानीकी आज्ञामें नहीं चलकरके अपनी मनमानी करना वही स्वच्छंद है। यानी ज्ञानी के मार्ग पर नहीं चलकरके अपनी कल्पनासे धर्मसाधन करना वह स्वच्छन्द है। इस प्रकारसे स्वच्छंद करते हुए जीवको उदासीनता क्यों नहीं आई ? 'इस प्रकार नहीं करना चाहिये था'- ऐसा क्यों नहीं आया ? 'हमको ऐसा नहीं करना चाहिये' - ऐसा क्यों नहीं आया?

शरीरके दर्दके विषयमें हम ऐसी गलती नहीं करते हैं। हम क्या? गँवार आदमी होता है वह भी नहीं करता, हम तो कुछ बुद्धिजीवी लोग हैं, बुद्धिसे कुछ और काम करते हैं, बुद्धिसे जीवन जीते हैं। हम अपना उपजीवन - कमाई वगैरह बुद्धिसे करते हैं लेकिन जो गँवार होता है, शारीरिक परिश्रमसे ही पेट भरता है, उसको भी जब दर्द होता है तो वह डोक्टरके पास जाता है, वह भी अपने आप दवाई नहीं खाता और न ही कोई इलाजकी पुस्तक पढ़नेका प्रयास करता है। हमलोग क्या करते हैं ? या तो ग्रंथ पढ़नेको बैठ जाते हैं, या तो व्रतादि उपवास कर लेते

हैं, जैसा मनमें आया वैसा कर लेते हैं। जिसके पास शरीरबल है वह व्रतादिमें चले जाते हैं, जिसके पास बुद्धिबल है वे ग्रंथ पढ़नेमें चले जाते हैं, तनबल और मनबल, अब रहा धनबल। जिसके पास पैसे हो वह दान देनेमें चले जाते हैं और मानते हैं (कि) हम कुछ धर्म करते हैं लेकिन इस विषयके तजज्ञ कौन है ? ज्ञानी कौन है ? और कैसे यह धर्मसाधन करना चाहिये? यह बात समझे बिना हम अपनी मनमानी कर लेते हैं।

ऐसे ही अनंतकाल बीता है; और इसलिये परिभ्रमण छूटा नहीं, परिभ्रमण मिटा नहीं, जिसको मिटानेकी अभिलाषा है, जन्म-मरणसे जिसको छूटना है, उसको यह विचार आता है कि हमने ऐसा क्यों किया ? ऐसी गलती क्यों की? जबकि नहीं करनी चाहिये थी ! **''दूसरे जीवोंके प्रति क्रोध करते हुए, मान करते हुए, माया करते हुए, लोभ करते हुए या अन्यथा करते हुए, यह**

बुरा है, ऐसा यथायोग्य क्यों न जाना ?'' यह अहितकर है, आत्माको अहितकरनेवाला है, ऐसा क्यों नहीं जाना ? **'यथायोग्य'** क्यों नहीं जाना ? माने क्रोध, मान, माया, लोभके परिणाम जो होते हैं, इसको यथार्थतामें जानना चाहिये था। यथार्थतामें माने क्या ? मुमुक्षुकी भूमिकाके (परिणाम) कैसे होते हैं ? ज्ञानीकी भूमिकाके परिणाम कैसे होते हैं ? मुनिकी भूमिकाके परिणाम कैसे होते हैं ? यह चार प्रकारकी कर्म-प्रकृतिया हैं,- क्रोध, मान, माया लोभ, सभी जीवोंको यह चारों प्रकृतियोंका उदय क्रमसे आता है, कभी दों का या तीनका साथमें भी उदय आता है - कभी किसीको चारों मुख्य होती है, कभी किसीको तीन मुख्य होती है, कभी किसीको दो मुख्य होती है, तो कभी किसीको कोई एक मुख्य होती है, और बाकी की तीन सामान्य होती है तो इस विषयमें मुमुक्षुकी भूमिकामें अनंतानुबंधीका प्रकार क्या है ? ज्ञानीकी भूमिकामें अनंतानुबंधीका प्रकार जानेसे यह चार प्रकृतियोंके परिणाम कैसे होते हैं ? मुनिकी दशामें संज्वलनके प्रकार कैसे होते हैं ? ऐसा कुछ भी यथायोग्य नहीं जाना। इसलिये हमने जो मुनि नहीं है उनको मुनि माना, जो ज्ञानी नहीं है उनको ज्ञानी माना, ज्ञानी है उनको अज्ञानी माना, और मुमुक्षुको भी नहीं पहचाना कि कौन कैसे होते हैं ? किसीको यथायोग्य नहीं जाना। क्योंकि यह दोष है, परिचित है इसलिये समझमें तो आता है लेकिन कहाँ कैसे होता है उसका विज्ञान हमारे पास नहीं होनेसे हम (इसकी मर्यादा) जानते नहीं है।

इसलिये **''ऐसा यथायोग्य क्यों न जाना ? अर्थात् ऐसा जानना चाहिये था,''** यह जानना जरूरी था, हमारे हित-अहितके लिये जानना जरूरी था। **''फिर भी न जाना; यह भी पुनः परिभ्रमण करनेसे विरक्त बनाता है।''** नहीं करनेके विषयमें, 'करनेसे' माने नहीं करनेके विषयमें वैराग्य को देता है; कि अब परिभ्रमण नहीं करना है। यह जो परिभ्रमण के कारण हैं उनको छोड़ देना चाहिये। खास करके अपने जो तीव्र परिणाम हैं - क्रोध, मान, माया, लोभके और हमारी धर्मप्रवृत्ति जो ज्ञानीकी आज्ञा अनुसार नहीं है, उस विषयमें हमको इस प्रकारके परिणाम होने चाहिये कि यही हमारे परिभ्रमणके कारण हुए हैं, अभी हमको इस परिभ्रमणसे छूटना है - अब परिभ्रमणमें जाना नहीं है, इस तरहसे वैराग्यपूर्वक परिणाम चलने चाहिये तभी तो रस कम होगा।

मुमुक्षुकी भुमिकामें जो वैराग्य होता है, उसमें नीरस परिणामको वैराग्य कहते हैं। लोग त्यागको वैराग्य समझते हैं, लेकिन मुमुक्षुकी भूमिकामें यह बात नहीं है। फिर भी कोई (त्याग) करता है, ठीक है। लेकिन वास्तवमें नीरसपना वही वैराग्य है और वही उस भूमिकाका त्याग है। क्रोध, मान, माया, लोभके परिणाममें नीरसता आनी चाहिये। वह चारित्रमोहके परिणाम हैं, चारित्रमोहके परिणाममें परिभ्रमणकी चिंतना के कारणसे अगर नीरसता आयी तो दर्शनमोह जो है उसकी शक्ति भी कमजोर होगी। क्या सम्बन्ध हुआ ? क्या बात ली है ? कि चारित्रमोहके परिणाम स्वच्छंदसे किये माने तीव्र रससे किये। जबकि जिसको परिभ्रमणकी चिंता होती है उसके क्रोध, मान, माया, लोभके परिणाम फीके हो जायेंगे। फीके होनेसे दर्शनमोहके परिणाम भी कमजोर हो जायेंगे। ये दोनों बातें बननेसे ज्ञानमें निर्मलता (आती है अर्थात्) अपने हित - अहितकी सूझ, (और) इस प्रकारका विवेक प्राप्त होता है। इस प्रकारसे चारित्रमें, श्रद्धामें और ज्ञानमें तीनोंमें - जो कि प्रधानगुण हैं उसमें फेरफार होता है। उसीको एक शब्दमें कहते हैं 'पात्रता'। एक शब्दमें उसको 'पात्रता' बोला जाता है। मुमुक्षुकी पात्रता, मोक्षार्थीपना, आत्मार्थीपना - उसमें क्या होता है ? कि उसका जो दर्शनमोह है वह कमजोर होता है, उसके ज्ञानमें हित-अहितका विवेक प्राप्त होता है और उसके चारित्रमोहके परिणाम फीके हो जाते हैं। इस प्रकार मोक्षमार्गमें जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र होते हैं, उन तीनों प्रधान गुणोंमें, इस प्रकारका फेरफार मुमुक्षुतामें आ जाता है और वही फेरफार आगे बढ़करके जब तीनों गुण आत्मसन्मुख होते हैं तब उसको सम्यक्त्व कहते हैं। यह परिभ्रमणकी चिंतनासे इस पात्रताकी शरूआत होती है और वह वैराग्यसमेत होती है।

''और स्मरण होता है कि जिनके बिना एक पल भी मैं न जी सकूँ, ऐसे कितने ही पदार्थ (स्त्री आदि), उनको अनंत बार छोड़ते, उनका वियोग हुए अनंत काल भी हो गया; तथापि उनके बिना जीवित रहा गया, यह कुछ कम आश्चर्यकारक नहीं है।'' क्या कहते हैं ? (पहले) रागका विषय लिया (है), जीवको तीव्र राग होता है। पतिको पत्नी पर (होता है), पत्नीको पति पर होता है, कि उसके बिना मैं जी नहीं सकता, मेरा जीवन नहीं चल सकता, तीव्र राग ऐसा होता है। अनंतकालमें ऐसे परिणाम बहुत किये और ऐसे पदार्थ भी छोड़े, वियोग भी हुआ, क्योंकि आयुष्य पुरा होता (है), - खुदका (आयुष्य पूरा) होता है, या सामनेवाले का (आयुष्य पूरा) होता है। किसी न किसीका तो आयुष्य पहले पूरा होता ही है। (फिर भी) चलते हुए जीवनमें ऐसा लगता है कि मैं जी नहीं सकूँगा, इसके बिना मैं जी सकता नहीं। ऐसा तीव्र राग किया है। फिर भी अभी तक इसके बिना खुद मरा नहीं, जिंदा है और यह वर्तमान विद्यमानता इसका सबूत है कि वर्तमानमें हम जिंदा है फिर तो वह बात जो हमारे अनुभवमें आई थी कि हम नहीं जी सकेंगे, - हम नहीं जी सकेंगे, वह बात बिलकुल गलत थी। गलत थी माने कल्पनामात्र थी, क्या ? कल्पनामात्र थी, ऐसा ही कहेंगे।

''अर्थात् जिस जिस समय वैसा प्रीतिभाव किया,'' राग कहो या सांसारिक प्रेम कहो, प्रीति कहो एक ही बात है, **''जिस जिस समय वैसा प्रीतिभाव किया था उस उस समय वह कल्पित था।''** क्या था ? कल्पित था। वास्तविक परिस्थिति वैसी नहीं थी। कभी-कभी ऐसा होता था (कि कोई) मनुष्य/आदमी मर जाता है तो उस जमानेमें (उसकी) स्त्री उसके पीछे सती हो जाती थी। वह भी उसके साथ चिता पर जल जाती थी कि अब हमारा जिंदा रहना कोई जरूरी नहीं है। ऐसी एक मान्यता है कि वह जहाँ गया उसके साथ मैं भी वहाँ चली जाऊँगी। ऐसा कोई संभव नहीं है कि जो मर गया (है) उसके साथ कोई दूसरा मरे तो (दोनों) साथमें ही जायें। यह कोई हमारे कंट्रोल (control) की बात नहीं है। इसलिये कि जीवनमें जो भी कर्मबंधन किए हैं, सबने अलग-अलग प्रकारके किये हैं, और अपना कर्म भोगने के लिये अलग-अलग भोग्यस्थानमें वह उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें किसीका बस नहीं चलता है, कि हम इसके पीछे जाएँ, और साथमें रहें। ऐसा साथमें रहनेका राग है वह (राग) काममें नहीं आता। फिर भी तीव्र रागवशात् कोई ऐसा भी कर लेते थे, अभी तो वह जमाना चला गया है लेकिन एक जमानेमें ऐसा भी कर लेते थे। फिर भी उस रागके अनुसार वस्तुस्थिति तो है ही नहीं।

वस्तुके स्वरूप अनुसार सिद्धांत ऐसा है कि रागके अनुसार वस्तुका स्वरूप है ही नहीं। (किसी) भी प्रकारका राग ले लो, या द्वेष ले लो, या कोई भी विकारभाव ले लो किन्तु उसके अनुसार वस्तुका स्वरूप नहीं है, यह सिद्धांत है। बताईये, एक भी दृष्टांत लेकर कि ऐसा राग हुआ और वस्तुका स्वरूप वैसा ही हो, क्यों ? क्योंकि राग दूसरे पदार्थ पर किया जाता है, जिसमें कोई चेतन है, तो कोई अचेतन है। अब दो पदार्थ तो भिन्न है, जीव रागसे सम्बन्ध जोड़ता है। रागके माध्यमसे दूसरे भिन्न पदार्थोंके साथ जीव सम्बन्ध करता है। वास्तवमें दो पदार्थोंके बीचमें सम्बन्ध कभी है ही नहीं। दो पदार्थोंके बीचमें द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे, चारों पहलुओंसे अत्यंत अभाव है, अभाव है माने एक दूसरेमें एक दूसरेका हस्तक्षेप होनेका कोई प्रकार बनता नहीं है। जो भी परिणाम होते हैं दोनोंमें अपनी-अपनी योग्यताके कारणसे, अपनी अपनी योग्यता अनुसार होते है। सभी पदार्थ अपने गुणधर्म अनुसार परिणमन करते रहते हैं, यह पदार्थका विज्ञान है। इसमें इच्छा, राग, द्वेष, मोह कुछ काममें नहीं आ (सकता)। संसारके लोग जो उससे अनजान हैं वे चाहते हैं कि हमारी इच्छा अनुसार बनता रहे लेकिन ऐसा बनता नहीं। प्राय: ऐसा बनता नहीं है। इसलिये खेदखिन्न होते हैं, आकुलित होते हैं, दु:खी होते हैं लेकिन दु:खका कारण जानते नहीं कि हम दु:खी क्यों हुए? उसका कारण जानते नहीं। एक ही बातकी

जिद, हठ होती है कि पदार्थ मिलेगा तो मैं सुखी हो जाऊँगा, नहीं मिलेगा तो मैं दु:खी हो जाऊँगा लेकिन मिलने पर सुख होता नहीं, क्योंकि सुखके लिये फिर और प्रयास चालू ही रहता है। वास्तवमें अगर सुख मिल जाता तो कोई सुखके लिये प्रयास नहीं करता।

यहाँ मनुष्यलोकमें तो उतना पुण्ययोग नहीं है जितना देवलोकमें है। फिर भी वहाँ आकुलता की अग्नि बहुत-बहुत होती है, सामान्य नहीं होती है - बहुत होती है। वहाँ कोई व्यापार, धंधा, व्यवसाय, नौकरी कुछ नहीं है। सब संपन्न है, बीमारी नहीं है, वहाँ कोई डोक्टर नहीं है, देव धन्वन्तरी वैद्य होते हैं, लेकिन देव तो बीमार होते नहीं इसलिये उसकी जरूरत नहीं पड़ती है। न बचपन है, न वृद्धावस्था है फिर भी वे लोग बहुत दु:खी हैं, बहुत दु:खी हैं। क्या कारण है ? कि समाधान नहीं होता है। सुख नहीं मिलता है इस विषयमें कोई समाधान नहीं मिलता है और वहाँ पर भी अधिक-कम, अधिक-कम पुण्यवाले देव होते हैं। जो कम पुण्यवाले होते हैं, वे अधिक पुण्यवालेसे ईर्षा करते हैं। जैसे इधर होता है। इधर भी क्या होता है ? जैसे मानो चलनेवाला (या) सायकिल चलानेवाला गाड़ीसे खुद टकराएगा, फिर भी मार किसको पड़ेगी ? गाड़ीवालेको। क्यों ? ऐसा क्यों ? ये कोई न्याय है क्या ? गलती गाड़ीवालेकी नहीं हो और फिर भी मार किसको पड़ती है? गाड़ीवालेको। क्यों ? गाड़ीवालेकी ईर्षा है न ! सबके पास गाडी नहीं होती तो जिसके पास है उसने ऐसा क्यों किया ? बस ! और कुछ देखेंगे नहीं, कोई विचार नहीं करेंगे ! यह ईर्षाका प्रमाण, लोभकी तीव्रताके कारणसे, देवलोकमें सबसे अधिक है। इसलिये वहाँ देवलोकमें सब बहुत दु:खी हैं। कितने दु:खी हैं ? बहुत दु:खी हैं।

हमारे यहाँ होता है कि नहीं होता (है) ? जो बड़े-बड़े industrialist (इन्डस्ट्रीएलीस्ट) होते हैं वे (दूस-रेका) murder(खुन) कराते हैं कि नहीं कराते ? किसीको गिरानेमें, मारनेमें कितनी (राजनीति) चलती है!? उन लोगोंके पास लाखों - करोड़ों रुपये होनेके बावजूद भी कितने दु:खी हैं ? अगर इनके परिणामकी film (फिल्म) दिखाई जाए तो पता चले (कि) बहुत दु:खी हैं- हमारेसे ज्यादा दु:खी हैं।

इसलिये संसारमें गरीब भी सुखी नहीं है और धनवान भी सुखी नहीं है। मनुष्य भी सुखी नहीं है और देव भी सुखी नहीं है। तिर्यंच, नारकीके विषयमें तो कहने की जरूरत नहीं है कि वे तो दु:खी हैं ही। इसलिये चारों गतियोंके परिभ्रमणसे छूटनेके लिये हमारा प्रयास होना चाहिये और वह प्रयास होनेमें कैसे-कैसे परिणामसे हमारा परिभ्रमण हो रहा है ? यह बात हमारी समझमें आनी चाहिये, हमारी सूझमें आनी चाहिये और इस विषयमें इसका निषेध होना, इसका कड़ा निषेध होना यही परिभ्रमणकी चिंतना और वेदना है। ऐसा हुए बिना छूटनेके मार्गमें कोई आगे नहीं बढ़ सकता है।

ऐसा राग और प्रीतिभाव कल्पित था, **''ऐसा प्रीतिभाव क्यों हुआ ? यह पुन: पुन: वैराग्य देता है।''** मुझे ऐसा क्यों हुआ ? ऐसी कल्पना मैंने क्यों की ? कि जिससे मेरा परिभ्रमण और बढ़ गया ! ऐसा मैंने क्यों किया? ऐसे तीव्र रागके परिणाम परिभ्रमणको बढ़ानेवाले हैं। अब सवाल यह पैदा होगा कि क्या परिवारके सदस्य हैं उनके प्रति राग नहीं होना चाहिये ? यह तो हमारी feel-ings है, और वही हमारा जीवन है - अगर वह नहीं रहेगी तो फिर जीवनमें क्या रहेगा ? क्या बचेगा ? यह सवाल पैदा होता है। यह सवाल किसको पैदा होता है ? कि जिसको परिभ्रमणकी चिंता नहीं है उसको; परिभ्रमणकी चिंतावालेको यह बात नहीं रहती है। यह भी एक सवाल सामने आयेगा; जब कि यह सवाल तो आप लोगोंको उठाना चाहिये कि जब feelings आपसमें नहीं रहती है तो फिर एक दूसरे के प्रति जो duty (फर्ज) है, उसका पालन कौन करेगा ? ऐसी बात सुनकरके तो बेटा-बापकी सेवा नहीं करेगा तो इसका क्या ? फिर घर, गृहस्थी(की) व्यवस्था, समाज व्यवस्था कैसे बैठेगी ऐसा सवाल सामने आयेगा। देखो! यह मार्ग विवेकका है, अविवेकका नहीं है - यह बात तो ठीक है कि नहीं ? विवेक माने परम विवेकका है। अब जिसको आत्माके स्वयंके हित-अहितके

विषयमें विवेक जागृत हुआ हो, उसको परस्परका लौकिक व्यवहारमें कैसे आपसमें सुख-शांतिसे रहना चाहिये यह बात अच्छी तरह समझमें आती है। उपदेशका यह मतलब नहीं है कि आप कोई व्यवहारिक फर्ज या duty हो उसे बंद कर दो, ऐसा उपदेशका आशय नहीं है। लेकिन ऐसे कार्य करते हुए (जो) अपनत्व करते हैं, उसको बंद कर दो (यह कहनेका आशय है)।

जैसे एक बच्चा एक सालका है-छ: महिनेका है समझो, उसकी माँ अपनत्व करके उसका पालन-पोषण करती है और एक नौकरानी होती है वह भी उसकी परवरिश करेगी, माँ भी परवरिश करेगी और राजा, महाराजा, श्रीमंतशेठ के वहाँ ऐसी lady (आया) रखी जाती है जो माँ से भी ज्यादा अच्छी तरह से परवरिश करती है। क्यों ? कि आया उस विषयमें expert होती है। इसलिये तो उसको वह नौकरी दी जाती है - कि बच्चोंकी परवरिश करनेमें वह बहुत clever, बहुत expert होती है और माँ से भी अच्छी (परवरिश) करती है। अत: बच्चोंकी परवरिश करना इसमें कोई अपराध नहीं है लेकिन मेरा बच्चा-ऐसे परिणाम होना अपराध है।

घरमें कोई बीमार हुआ। उसकी दवाई लेने जाना, उसके लिये कोई सेवाकी जरूरत हो तो वह कार्य करना ये कोई अपराध नहीं है लेकिन 'ये मेरे फलाने हैं इसलिये मैं करुँ' यह परिणाम अपराध जरूर है। क्योंकि यह ममत्व है वह भय और सभी प्रकारके दु:ख और दोषका उत्पादक है। इसलिये दो में फर्क पड़ता है, फिर भी किसीको कोई problem (समस्या) हो तो उसकी चर्चा कर सकते हैं, कि आपको क्या-क्या problem आते हैं बताईये-कैसे होना चाहिये ? कैसे नहीं होना चाहिये ? व्यवहारिक कार्य बराबर करो, लेकिन भिन्नत्व रखते हुए, भिन्नत्व समझते हुए; अपनत्व नहीं करना है इतनी सी बात है। क्योंकि हमारा अस्तित्व और दूसरे जीवका अस्तित्व एक नहीं है। भिन्न भिन्न अस्तित्व है। ममत्व करनेसे कोई फायदा नहीं है बल्कि नुकसान ही नुकसान है। ममत्व करनेसे नुकसान ही नुकसान है कोई फायदा नहीं है और काम तो होनेवाला ही होता है, नहीं होनेवाला नहीं होता है। किसीके चाहनेसे होता है ऐसी बात नहीं है। जैसे हम चाहेंगे कि घरमें कोई बीमार पड़े ही नहीं और फिर भी बीमारी आ जाए तो दवा देते ही वह ठीक हो जाना चाहिये-लेकिन ऐसा कोई संभव नहीं है। होनेवाला ही होता है, नहीं होनेवाला नहीं होता है। हमको अपनत्व नहीं करके डयुटी पर्फोम करना है। डयुटी (कार्य) तो कर लेना है लेकिन अपनत्व करके नहीं करना है इतना फर्क है। यह बात भीतरकी रही, बाहरमें तो अच्छी तरहसे काम होगा, भीतरमें परिणाम बदल जायेंगे, जिससे खुदको दु:ख नहीं होगा, आकुलता नहीं होगी वरना ममत्व है वहाँ भय तो पहले आता है, ममत्वके साथ भय (तो होता ही है।)

देख लो आप, जहाँ-जहाँ ममत्व होता है, जितना ममत्व ज्यादा, उतना भय भी ज्यादा और उतना दु:ख भी ज्यादा। प्रेक्टिकल बात है, एकदम प्रेक्टिकल बात है।

जब (दूसरा) पदार्थ भिन्न है तो ममत्व करने से क्या फायदा ? जब वस्तुस्थिति ऐसी है कि भिन्न-भिन्न पदार्थ है, हमारा अस्तित्व ही वहाँ नहीं है, हम अपनत्व क्यों करते हैं ? खुद ही धोखा खा जाते हैं कि यह लड़का मेरा है, यह मेरी है, वह मेरा है-(सब) गड़बड़ है। जब कि अपना अस्तित्व इधर है, उसका अस्तित्व उधर है और हम चाहें वैसे हर समयके परिणाम भी अगलेके होते नहीं हैं। हम चाहें कि (उसका ऐसा) परिणाम होवे, उसका ऐसा भाव होवे, उसको ऐसा भाव होवे, और उसको ऐसा भाव होवे - लेकिन ऐसा हो सकता है क्या ? उनके भाव उनकी योग्यता के अनुसार होंगे, हमारे भाव हमारी योग्यताके अनुसार होंगे, एक दूसरेके परिणाम करवा सकते हैं क्या ? कभी संभव नहीं है।

प्रश्न : क्या अभिप्रायमें परायापन रखना ?

पू. भाईश्री : अभिप्रायमें यह बात है, कि सब भिन्न-भिन्न है बाकी बाहरकी जो डयूटी है वह परफोर्म

कर लेनी है। अभिप्रायमें भिन्नता (होनी चाहिये) समझमें तो अभी यह समझना है।

प्रश्न : आत्म-कल्याण का लक्ष्य सबसे पहला रखकर प्रवृत्ति करनी ?

पू. भाईश्री : पहले ही आत्म-कल्याणका लक्ष्य करना। सबसे पहले ही आत्मकल्याणका लक्ष्य करना। बगैर लक्ष्यकी प्रवृत्ति क्या कामकी ? और आत्मकल्याणका लक्ष्य नहीं है, वैसे तो संसारके जीव भी जीते हैं। सब ऐसे ही जी रहे हैं। पहले तो ये (लक्ष्य) होना ही चाहिए। तभी उसके अनुसार सब प्रवृत्ति यथायोग्य लक्ष्यपूर्वक चलेगी, वरना नहीं चलेगी।

एक सवाल है। स्पष्टता और भी कर लें। कभी-कभी आत्मकल्याणके लक्ष्यवाला जीव अपने आत्मकल्याण के मार्ग में आगे बढ़ता है; अग्रेसर होता है तब उसका सांसारिक duty पर लक्ष्य कम हो जाता है। तब साथमें रहनेवालेको ऐसा महसुस होता है कि मेरे प्रति negligence (उपेक्षा) intentionally (इरादापूर्वक) हो रही है। क्या ? इरादापुर्वक मेरे प्रति वह बेदरकार है और यह (हम) बर्दाश्त नहीं कर सकते, क्या ? यह बात हम बर्दाश्त... (नहीं कर सकते)। यह बात बनती है तब परिस्थिति नाजुक हो जाती है, तब परिस्थिति, थोड़ी नाजुक होती जाती है। ऐसी परिस्थितिमें क्या करना चाहिये ? किसको - क्या करना चाहिये ? जिसको असमाधान होता है उसको क्या करना चाहिये? कैसे समाधान लेना यह प्रश्न तो आपलोगोंको उठाना चाहिये कि नहीं चाहिये ? अनुभव तो होता ही है। वास्तवमें इसकी चर्चा कर लेनी चाहिये कि ये ऐसे कैसे हो रहा है ? अगर Honestly मतलब प्रमाणिकरूपसे यह बात हो कि वह अपने आत्मकल्याणके परिणाममें लगे हुए हैं और इसलिये दूसरी ओर ध्यान नहीं जाता हो (तो) इस बातको बर्दाश्त कर लेना अच्छा है। (कि) यह हम तो नहीं कर सकते हैं लेकिन जो करते हैं उनकी अनुमोदना तो कमसे कम करें ! वह हमारे लिये अच्छा है। हमारे लिये इस मार्गमें आनेके लिये यह अच्छी बात है लेकिन हम अपनी सुविधाके लिये इतने selfish (स्वार्थी) नहीं हो जाएँ कि अगला अपना मार्ग छोड़करके हमारे प्रति ध्यान देने लगे, ऐसा नहीं होना चाहिये। और हमारी जो अपेक्षावृत्ति है वह हमको ही दुःखदायक है। हम दूसरे से क्यों अपेक्षा रखें ? क्या कारण है ? जितनी अपेक्षावृत्ति रहेगी उतना उदासीनतासे दूर जानेका है। जितनी अपेक्षावृत्ति होगी उतनी उपेक्षावृत्तिसे दूर जानेकी बात है। अनंतकालसे अपेक्षावृत्ति कर-करके तो दुःखी हो रहे हैं। अब तो वैराग्यमें आना है, उदासीनतामें आना है और अपेक्षावृत्तिको तो छोड़ना ही चाहिये। संसारमें छोटेसे छोटा विग्रह है, लडाई है, क्लेश है - वह अपेक्षावृत्तिके कारण ही है। हमारी अपेक्षा नहीं होती है, तब हमको गुस्सा आता है। बस! क्लेश यहाँ से चालू होता है। जबकि (वस्तुका स्वरूप) और हमारे सिद्धांत तो ऐसे हैं कि अपेक्षा होवे ही नहीं।

प्रश्न : जहाँ पर हमारा ममत्व है वहाँ perform कर लें और जहाँ ममत्व नहीं है वहाँ उपेक्षा रखी जाय, क्या यह ठीक है ?

पू. भाईश्री : यह बात तो बिलकुल बराबर नहीं है। ममत्व है वहाँ उदासीनता है ही नहीं, कहीं भी ममत्व है तो, उदासीनता है ही नहीं। क्योंकि ममत्व है वहाँ तो सब करते हैं और ममत्व (नहीं होता है वहाँ) नहीं करते है, दुनिया सारी ऐसा ही करती है, तो उसमें क्या फर्क हुआ? सब ऐसा ही करते हैं। उसमें क्या फर्क हुआ ? यह तो वास्तवमें जो आत्मकल्याणके मार्गमें आगे बढ़ते हैं, आगे बढ़े हैं, उनको उदासीनता आती है, सांसारिक कार्योंमें उदासीनता आती है, तो वह उदासीनता सही है, होनी चाहिये। ऐसी उदासीनताके कारणसे संसारमें, घरमें क्लेश नहीं होना चाहिये, इसके कारणसे नहीं (होना चाहिये।)

प्रश्न : भाईश्री ! आप जैसे बता रहे हैं वैसा मुमुक्षु आत्मकल्याणके मार्गमें आये और उदासीनता आये तब अगर घरमें क्लेश शुरू हो जाए उसको उदासीनता आयी हो उसके बारेमें कितना भी explain कर लें, कितना भी समझाये फिर भी वह क्लेश चालु रह जाए तो हमें-

मुमुक्षुको क्या करना चाहिये ?

पू. भाईश्री : मुमुक्षुको (ऐसा) उदय जानकर के उससे भी उदासीन रहना। यह भी एक प्रकारका उदय है। हम चाहते हैं कि अगले को समाधान हो जाय, उनको भी शांति हो जाय, लेकिन यह जरूरी नहीं है (कि) हम चाहे वैसा हो ही जाये, नहीं भी हो सकता है, और नहीं होनेमें उसका कारण उसके पास है और उदयका कारण हमारे पास है। क्या है ? हमने पूर्वमें ऐसे कर्म बाँधे हैं वही उदयमें आ रहे हैं तो इसका कारण तो हमारा है और उसका परिणाम नहीं हो रहा है, उसका कारण उसके पास है। हमको हमारे कारण को देखना है, उसके कारण को नहीं देखना है,- समाधान ऐसे लेना। कभी भी हमारे परिणाम की जुम्मेवारी किसी और की हैं यह बात नहीं लेना है। कभी भी नहीं। हमारे परिणाम हमारे कारणसे हैं, और हमारा उदय भी हमारे कारणसे ही है। हमारे परिणाम भी हमारे कारणसे हैं, हमारा उदय भी हमारे कारणसे है। चाहे वह उदय प्रतिकूल हो या अनुकूल हो।

अब आप कहेंगे कि यह प्रतिकूल उदय है इसलिये हमको सुहाता नहीं है - परन्तु यह बात हमको नहीं होनी चाहिये ? प्रतिकूल उदय और वैराग्यको देनेवाला होता है, क्या ? इस मार्गमें-इस लाईनमें प्रतिकूलताका उदय वह तिरनेके बराबर है और वैराग्यको देता है। यह संसारका स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है (वहाँ)-और वैराग्य आयेगा, और हमारी उदासीनता बढ़ेगी तो वैसी प्रतिकूलता हमारे लिये प्रतिकूलता नहीं है परन्तु वैसी प्रतिकूलता हमारे लिये एक प्रकारकी अनुकूलता है। इस लाईनमें ज्ञानी होने के लिये ये एक बहुत बढ़िया न्याय है। क्योंकि यह policy(नीति) ज्ञानियोंकी है, यह नीति ज्ञानियोंकी है, हमको इसका अनुसरण करना है। कोई भी उदय आ जाए, चाहे अनुकूलता हो या प्रतिकूलता-वह तो कहलानेवाली चीज है, वास्तवमें ऐसा कुछ है ही नहीं, वस्तुके स्वरूपमें ऐसा है ही नहीं, लेकिन कोई भी प्रकारकी परिस्थिति बनती हो फिर उसको अनुकूलता कहनेमें आती हो चाहे प्रतिकूलता कहनेमें आती हो, हमको हमारे आत्मकल्याणमें कैसे turn लेना वह बात, वह टेकनीक (technique) हमारे पास होनी चाहिये। यह कार्यपद्धति है। ज्ञानियोंकी ऐसी कार्यपद्धति है, मुमुक्षुकी ऐसी कार्यपद्धति होनी चाहिये, कि हम उसको आत्मकल्याणमें कैसे घटा ले ? यह मोड़ लेना है। फिर आपको कहीं भी तकलीफ होनेवाली नहीं है, हर हालतमें अपने आप आत्मकल्याणमें अग्रेसर हो करके आप आगे बढ़ते जायेंगे। किसी भी उदयकी चिंता आपको नहीं होगी।

जैसे आपकी कोई निंदा करता है, ठीक है ! और नहीं करने लायक ऐसी निंदा करते है, चलो; ठीक है ! तो आपको बुरा लगेगा; (लेकिन) नहीं लगना चाहिये, क्यों ? आपको बुरा लगेगा लेकिन नहीं लगना चाहिये, क्यों ? कि वह भी एक प्रकारका कर्म का उदय है, जो हमने भूतकालमें कुछ परिणाम उसके लिये किये थे तो यह तो हमारे अपराधके कारणसे आया हुआ उदय है। वह जीव वर्तमानमें अपराध करता है, उसकी वह जाने। अब हमारा जो उदय है वह एक हमारा कर्ज था जो कर्ज हम चुका रहे हैं; चुकाना है हमको, फिर भी उसमें वह मदद करता है तो उसके प्रति बुरा क्यों मानें ? वह तो मदद करनेवाला है। जैसे आपके कपड़े मैले हुए थे, साबुन, पानी, सोड़ा सब उनका ले करके आया, और धोनेका परिश्रम भी वही करता है और आप बुरा लगाते हो यह कहाँका न्याय है ?-बिलकुल (बुरा) नहीं लगाना चाहिये, भीतरमें खुश-खुश हो जाना। क्या? भले ही बाहरमें कुछ दिखाव करने की जरूरत नहीं है, परन्तु भीतरमें खुश हो जाना, चलो यह ठीक हुआ, यह भी एक ठीक हुआ, यह भी एक ठीक हुआ, आपको कुछ होनेवाला नहीं है और क्या फर्क पड़ता है ? उसके परिणाम उसके पास हैं, उसके शब्द-पुद्गलके परिणाम हवामें चलते हैं। पुद्गलके परिणाम हवामें चलते हैं। उसके परिणाम उसके भाव उसके आत्मामें चलते हैं, हमको तो कोई स्पर्श भी करता नहीं है ! हम हमको-हमारी जातको involve क्यों करें ? कोई जरूरत नहीं है।

समाधिशतकमें जो पूज्यपादस्वामी आचार्यदेव हैं,

वे कहते हैं, कि कोई निंदा करनेवाला, गाली देनेवाला, हमको तो देखता नहीं है, हमको तो वह (देख नहीं पाता) और मैं तो अरूपी आत्मा हूँ, उसके इन्द्रियज्ञानका तो विषय मैं होता नहीं, किसीके इन्द्रियज्ञानका तो मैं विषय नहीं हो सकता और जो मेरे शरीरको देखता है वह तो मैं हूँ नहीं। जिसको वह देखता है वह मैं नहीं और मुझे तो वह देखता नहीं है। फिर वह मुझको कहता है वह बात कहाँसे आई ? मेरी बात है नहीं, फिर संसारमें कहीं दु:खी होनेका कारण है ही नहीं। संसारमें कोई दु:खका कारण है ही नहीं। क्यों ? कि उसने हमारा कर्ज चुकता कर दिया, कर्ज चुकानेमें उसने मदद कर दी। ठीक बात है। हमारा फर्ज वह था कि हमारा कर्ज हम चलके देनेको जाये कि भाई ! आपने हमको पाँच हजार रुपया दिया था उसका जो interest होता है, व्याज होता है वह इतना होता है, इसे आप ले लो। इसके बजाय वह लेनेको आ गया; तब प्रामाणिकता तो यह है कि आपको व्याज भी देना चाहिये और आने-जानेका किराया और पेट्रोल के पैसे भी देने चाहिये, और प्रामाणिक होते हुए इतनी offer कर देनी चाहिये कि आपका समय बिगड़ा इसलिये आप और बोलो तो और भी दे दें (क्योंकि) हमारा समय तो बच गया है। आपके पैसे थे, आपका व्याज था और आपने आनेका परिश्रम किया-परिश्रमका पैसा ले लो, समय बिगड़ा उसका पैसा भी ले लो, आने-जानेका किराया ले लो, वैसे पुरी प्रामाणिकतासे हो जाओ उदार ! ऐसी बात है।

अब बताईये, कौनसे उदयमें आपको तकलीफ होती है ? बताईये! फिर भी कोई उदयमें तकलीफ होती हो तो बता देना। सबका solution (समाधान) है। एक भी सवाल ऐसा नहीं है कि जिसका इधर जवाब नहीं है। no question remains unanswered -एक भी (सवाल) नहीं रहेगा । सर्वांग समाधान स्वरूप आत्मा है और आत्मता प्राप्त करनेका मार्ग भी सर्वांग समाधानरूप ही होता है। एक अंगमें भी असमाधान का सवाल नहीं है। इसलिये ज्ञानीको हर हालतमें समाधि होती है। कृपालुदेव क्या लिखते हैं ? **''अत्र उपाधि है और वह उपाधिमें भी समाधि है''** लिखते हैं कि नहीं लिखते हैं ? जब कि उपाधिमें समाधि यह बात तो परस्पर विरुद्ध है। उपाधि खुद ही दु:खदायक है और समाधि सुखदायक है, लेकिन इधर दोनों बातें हैं इसलिये सामान्य मनुष्यको ज्ञानीका स्वरूप समझमें नहीं आता है कि ये दो परस्पर विरुद्ध बात कैसे चलती है ? जब कि बराबर चलती हैं। पूर्व कर्म अपनी track में चलता है, और आत्मा अपनी track में चलता है, दोनोंकी गाड़ीका track अलग-अलग है, स्पीड (speed) अलग-अलग है, और दोनोंका destination भी अलग-अलग है। (फिर भी) बराबर चलती है और उसीका नाम ही साधकदशा है। साधकदशामें तो दोनों चलनेवाले हैं ही।

प्रश्न : ज्ञानीगुरु से भी समाधान नहीं मिले तब दु:ख नहीं मिटता, क्या करें ?

पू. भाईश्री : वहाँ कोई समाधान असमाधान रहनेवाला है ही नहीं (कृ. देवने आत्मसिद्धिमें) ''परम ज्ञान सुख धाम'' ऐसा लिया है। क्या है ? परमज्ञान भी वही और सुखधाम भी वही।

यह बात तो चली रागके विषयमें, कि हमने भूतकालमें बहुत तीव्र राग किया था, इसके कारणसे ही परिभ्रमण किया। हमारे तीव्र रागके परिणाम परिभ्रमणके कारण हुए हैं, (अब नहीं) हो जाये इस विषयमें हमें जागृत रहना है। यह जागृति उदासीनताको लायेगी, यह जागृति नीरसपनाको लायेगी और प्रारंभ की भूमिका के लिए वही यथार्थ परिस्थिति है, जितना राग तीव्र होगा, उतना दु:ख भी तीव्र ही होगा। इस भूमिकामें वह जितना फीका होगा, वह हमारे लिये अच्छा है। वीतराग तो रागके अभावमें होते हैं, जो भी हमारे वीतराग जिनेन्द्र परमात्मा हुए, उन्होंने रागका अभाव कर दिया लेकिन उसका विज्ञान ऐसा है कि राग फीका हुए बिना अभावको प्राप्त नहीं होगा। अनंतकालसे उसको घूंटा है और उसकी परिणति बनकरके जाम (गाढ़) हो गयी है।

जंग लगनेसे जैसे कोई बोल्ट-नट जाम हो जाता है। वैसे तो जंगके परमाणु बहुत छोटे-छोटे होते हैं लेकिन उनमें ताकत इतनी है कि उनको घुमानेवाला चाहे कितनी भी ताकत लगाये, टस से मस नहीं होता है। एक सेन्टीमीटर भी वह खिसकता नहीं, फिर जब वह कोई केमीकल-रसायणकी प्रक्रिया की जाती है तब वह जंग ढीला पड़ता है, फिर वह घुमता है। वरना ताकत लगानेवाले के पास तो बड़े-बड़े साधन हैं, और ताकत भी बहुत लगाते हैं और वे परमाणु भी छोटे हैं फिर भी मचक नहीं देते हैं। (वहाँ) कोई (इसका) सोल्युशन लगाते हैं, कोई केमीकल लगाते हैं, तब वैसे उसको कमजोर कर देते हैं। फिर अगर ताकत लगाते हैं तो काम चल जाता है। इस प्रकार कामकी कोई टेकनीक भी होती है।

इधर भी हमको एक व्यवस्थित काम करना है, ऐसे-वैसे नहीं करना है। व्यवस्थित रूपसे, योजनाबद्ध काम करना है और तभी सरलतासे, सुगमतासे यह काम (होगा और) हमेशके लिये permanent सुखका-सुख-शांतिका जिसका फल है (वह प्राप्त होगा)। हमको कुछ भी करके, या नहीं करके, सुख-शांति ही चाहिये। हमको गलत रास्ता छोड़करके सही रास्ता पकड़ना है, इतनी सी बात है और इसके लिये ज्ञानियोंने लंबी-चौड़ी बात की है।

प्रश्न : मोक्ष पाने के लिये project बनाना पड़ेगा ?

पू. भाईश्री : हाँ, project बनाना है, पूर्णताका लक्ष्य बनाना है और परिभ्रमणकी चिंतनासे उसकी प्रक्रिया- process चालू करनी है, एकदम व्यवस्थित बात है, scientific बात है, ऐसे-वैसे नहीं चलना (है), मनमानी नहीं करनी है वह तो अभी तक बहुत की, अब नहीं करना है।

अभी तो यह रागके विषयमें पेराग्राफ लिखा है, अब द्वेषके विषयमें लि-खते हैं कि हमने द्वेष भी कितना किया है ! जब परिणाममें द्वेष होता है, तो राग होता ही है, दोनों एक ही मोहकी संतान है। कैसे हैं ? मोहकी ही संतान हैं। दोनों साथ ही होते हैं। किसीको अकेला राग होवे और द्वेष नहीं होवे, ऐसा नहीं बन सकता। रागकी पूर्ति नहीं होती, पुष्टि नहीं होती (तब) द्वेषका जन्म हो ही जाता (है)। वह खड़ा ही है, परदेके पीछे वह खड़ा ही है हमारे आत्माने द्वेष भी बहुत किया है, कैसे-कैसे किया है ? जो हमारे परिभ्रमणका कारण हुआ है, इस विषयमें यह दूसरा पेराग्राफ कहेंगे, वह शामके सत्संगमें लेंगे।

*

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

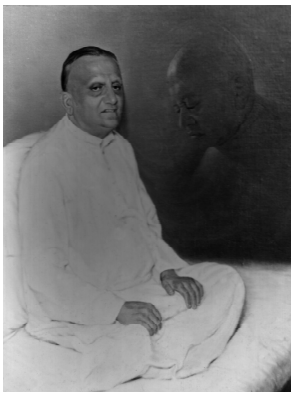

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से 'मुमुक्षु की भूमिका' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

पहेले तो (तत्त्व की) धारणा बराबर होनी चाहिए। लेकिन धारणा अंतर में उतरे तभी सम्यग्ज्ञान होता है। धारणा में भी इधर का (आत्मा का) लक्ष्य होना चाहिए। (धारणा स्वलक्ष्यी होनी चाहिए। स्वलक्ष्यी धारणा प्रयोग की उत्पादक होती है। और प्रयोगान्वित धारणा में धारण किया हुआ उपदेश जब अंतर में उतरता है तभी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। (२४)

*

विकल्प से और मन से (परलक्ष्यीज्ञान में) किया हुआ निर्णय सच्चा नहीं। अपनी ओर दृष्टि को तादात्म्य करनेपर ही अपने से किया हुआ निर्णय सच्चा होता है। पहले विकल्प से - अनुमान से (स्वलक्ष्यीज्ञान में) निर्णय हो, उसमें भी लक्ष्य तो अंतर में ढलने का ही होना चाहिए। (४९)

*

तीव्र प्यास (जिज्ञासा) लगनी चाहिए। प्यास लगे तो जैसे-तैसे बुझाने का प्रयत्न किये बिना रहे ही नहीं। (६४)

*

प्रश्न :- पक्के निर्णय बिना 'मैं शुद्ध हूँ', 'त्रिकाली हूँ', 'ध्रुव हूँ', ऐसे-ऐसे अनुभव का अभ्यास करें, तो अनुभव हो सकता है क्या ?

उत्तर :- नहीं ! पक्का निर्णय नहीं, लेकिन यथार्थ निर्णय कहो। यथार्थ निर्णय होनेके बाद ही निर्णय में पक्कापन होता है, फिर अनुभव होता है। (९२)

*

विकल्प की भूमिका में भी (जिसको) निर्णय नहीं होता, उसको निर्विकल्प निर्णय होने का अवकाश ही कहाँ है ? (११८)

*

त्रिकाली का पक्ष करो ! ऐसा (अपूर्व) पक्ष करो कि अनंतकाल में कभी हुआ न हो। वर्तमान का पक्ष छोड़ो! (३२८)

*

जिसको अपना सुख चाहिए उसे, अपना सुख जिनको प्रकटा है, उनके पास (सर्वार्पण बुद्धिपूर्वक शरण में) जानेका भाव आता है। (५०१)

*

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १३-C

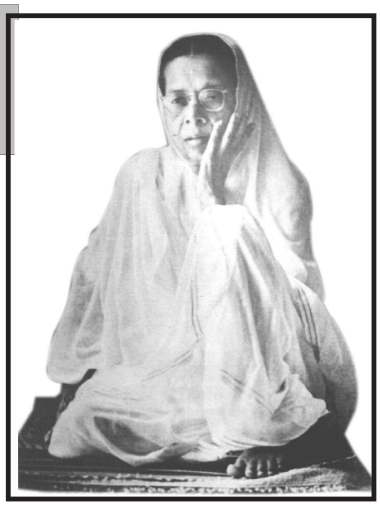

मुमुक्षु :- वह ऐसा कहे कि सर्वज्ञने देखा है उस समय मेरा मोक्ष होगा, वह ऐसा करने के लिये वास्तविकरूपसे लायक नहीं है। जिसे चारों पहलुओंसे सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं आयी है और स्वयं उसप्रकार का पुरुषार्थ नहीं करता है।

समाधान :- तो वह कहने के लायक नहीं है कि भगवानने देखा है वैसा होगा। स्वयं को अन्दर कोई पुरुषार्थ करना नहीं है और भगवानने देखा है वैसा होगा। भगवानने मेरे भव देखे ही नहीं है। क्योंकि मुझे आत्मा ही चाहिये और मुझे पुरुषार्थ करना ही है। इसलिये भगवानने मेरे भव देखे ही नहीं। ऐसी प्रतीति उसे अन्दरसे आती ही।

मुमुक्षु :- अन्दरसे उसे ऐसी आवाज आनी चाहिये।

समाधान :- ऐसी आवाज उसे आती है।

मुमुक्षु :- चलते परिणमन में दुःख लगना चाहिये। दुःख तो लगता नहीं है।

समाधान :- दुःख लगता नहीं। अन्दर सब आकूलता है और दुःखस्वरूप है। दुःख लगे। सुखस्वरूप मेरा आत्मा है। यह सब तो दुःख है। और ये जो आस्रव है वह तो विपरीत है, आकूलतारूप है, दुःखरूप है, दुःख के फलस्वरूप है। यह सब जो चलते परिणाम है वह दुःखरूप ही है। ऐसा उसे दुःख का विश्वास आना चाहिये। और अन्दर आत्मा में सुख है ऐसा सुख का विश्वास आना चाहिये। सुख के विश्वासपूर्वक यह दुःख है, ऐसा उसे भासना चाहिये। अर्थात् उसपरसे रुचि उठ जानी चाहिये कि ये सब तो दुःखस्वरूप है। मेरे स्वभावसे विपरीत है, दुःखरूप है, आकूलतारूप है। मेरा स्वरूप सुखरूप है, निराकुलस्वरूप है। सुख स्वभाव मेरे आत्मा में ही है, ऐसा उसे लगना चाहिये। उतना विश्वास उसे अंतरसे आना चाहिये।

बाहर में रुचि लगती है, बाहर में रस आता है और अंतर में मुझे प्रगट करना है, ऐसे नहीं होता। दोनों स्थान में रस हो ऐसा नहीं होता। रुचि आत्मा की लगे, एक ओरसे रुचि छूट जाये और आत्मा की रुचि लगे तो होता है।

मुमुक्षु :- राग की रुचि रखे और सर्वज्ञने देखा है वैसा होगा, वह भी बराबर नहीं है।

समाधान :- रुचि राग की है और स्वभाव की रुचि नहीं है और भगवानने देखा है वैसा होगा (ऐसा कहता है) तो बचाव करता है।

मुमुक्षु :- दो दिन पहले की चर्चा में आपने बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण दिया था कि आत्मा शुद्ध है, ऐसा जो कहता है उसे, चारित्र की बात एक ओर रखे, लेकिन नौ-नौ कोटिसे अभिप्रायमेंसे राग..

समाधान :- राग की हेयबुद्धि होनी चाहिये। राग किसी भी प्रकारसे आदरणीय नहीं है। जो-जो राग आये वह मेरा स्वरूप ही नहीं है। ये कोई राग मुझे चाहिये ही नहीं, मैं तो वीतरागी स्वरूप हूँ। यह राग मेरे

आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। ऐसी रुचि अंतरमेंसे होनी चाहिये। चाहे जो सूक्ष्म ऊच्चसे उच्च राग हो, तो भी राग मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो जाननेवाला हूँ। उतनी हेयबुद्धि अंतरमेंसे आ जानी चाहिये। राग की मिठास थोड़ी-सी भी रह जाये तो उसे अन्दरसे यथार्थ श्रद्धा होती नहीं। यथार्थ निर्णय नहीं होता।

इसलिये आता है न कि चाहे जितनी बाह्य क्रिया करे, त्यागकर जंगल में चला जाये लेकिन अन्दर गहराई में राग मीठास रहती है तो अंतरसे आत्मा प्रगट नहीं होता। उसे भेदज्ञान नहीं होता। राग की मीठास अंतर में रह जाये तो। चाहे जैसा राग हो लेकिन यह राग मेरा स्वरूप नहीं है, उसकी हेयबुद्धि अंतरसे आनी चाहिये।

मुमुक्षु :- तो उसने अपने आत्मा को शुद्ध माना ऐसा वास्तव में कहा जाय।

समाधान :- तो उसने शुद्ध माना, तो उसने जाननेवाला माना, अकर्ता माना, ज्ञायक माना।

मुमुक्षु :- मुनिराज जैसे जंगल में बैठे हैं, सब छोड़कर बैठे हैं, उनको जबतक स्वरूप का .. नहीं होता, तो हम तो जंजाल में बैठे हैं तो हमें कैसे होगा?

समाधान :- बाहर सब छोड़कर बैठा, लेकिन अंतरसे छूटना चाहिये। उसके अभिप्रायमेंसे (छूटना चाहिये)। वैराग्य तो आया, संसार छोड़ दिया, घरबार छोड़ दिया, वैराग्य आया। वैराग्य आया लेकिन आत्मा को पहचाना नहीं है और जो कोई भी क्रियाएँ करता है, पंच महाव्रतादि, उस शुभभाव की राग की मिठास अंतर में है। अंतरसे हेयबुद्धि हुयी नहीं। आत्मा ज्ञायक जाननेवाला, उसकी प्रतीति आयी नहीं। सब में रुचि, शुभभावों में रुचि हुयी। चौथे काल में कोई ऐसा हो कि बराबर करे, ऐसी क्रिया तो अभी दिखाई नहीं देती, बराबर क्रिया पाले, स्वाध्याय काल में स्वाध्याय करे, निर्दोष आहार, सब करे। आवश्यक क्रिया सब करे परन्तु अंतर में पुण्यभावों की मीठास होती है। लेकिन यह सब होने के बावजूद भी यदि अंतरसे रुचि छूट गयी तो गृहस्थाश्रम में भी उसे द्रव्य पर दृष्टि और भेदज्ञान होता है। अंतर की परिणतिमेंसे छूटना चाहिये। बाहरसे छूटनेसे होता नहीं। परिणतिमेंसे छूटना चाहिये। जिसे परिणतिमेंसे छूट गया, वह बाहरसे गृहस्थाश्रम में हो तो भी उसे हेयबुद्धि हो गयी। अंतरमेंसे, बोलनेमात्र नहीं। अंततः स्वरूप में लीनता.. उसे पुरुषार्थ की मन्दता के कारण गृहस्थाश्रम में है, उसकी लीनता वृद्धिगत होते-होते उसे बाहरसे सब त्याग हो जाता है। जिसे अंतरसे छूटा उसे बाहरसे क्रमशः छूट ही जायेगा, सब राग छूट जायेगा। लेकिन जिसे अंतरसे नहीं छूटा, बाहरसे छोड़ दिया तो वह तो फिरसे होनेवाला है। वृक्ष का मूल ऐसे ही है और डाल, पत्ते आदि तोड़ दिये तो फिरसे पल्लवित होगा। मूल टूट गया, फिर डाल-पत्ते आदि तो सूख जायेंगे। अंदरसे मूल काट दिया है। गृहस्थाश्रममेंसे राग छूट गया, अंदर हेयबुद्धि हो गयी, भेदज्ञान हो गया। द्रव्य पर दृष्टि, ज्ञाता की धारा प्रगट हो गयी, स्वानुभूति हो गयी फिर थोड़ा बाकी है वह तो छूट जायेगा, सूख जायेगा।

मुमुक्षु :- अंतरसे छूटना चाहिये।

समाधान :- अंतरसे छूटना चाहिये। मुनि हो जाय, लेकिन अन्दर परिणति में सब पड़ा है।

मुमुक्षु :- राग की रुचि पड़ी है।

समाधान :- राग की रुचि पड़ी है इसलिये फिरसे पल्लवित होनेवाला है।

*

(पृष्ठ संख्या ५ से आगे..)

नहीं जाती। यहाँ तक रहती है। लोहे का ऐसा स्वभाव है... अग्नि के कारण नहीं। अग्नि तो दोनों को एक है... जायेगा, उसकी योग्यता की पर्याय है।

इसी प्रकार स्फटिक और भगवान आत्मा जो शुभरूप से रंगे तब शुभ विकल्परूप परिणमता है; अशुभरूप रंगे तो अशुभरूप तन्मय हो जाता है; शुद्धरूप होवे तो शुद्ध से तन्मय हो जाता है। समझ में आया? ऐसा उसका पर्याय धर्म है। यहाँ से हटकर यहाँ जा तो वहाँ तन्मय तेरी निर्मलदशा प्रगट होगी, वरना यह राग-द्वेष की तन्मय तेरे अस्तित्व में है, क्योंकि जीव का तत्त्व है न! उमास्वामी ने इसे जीवतत्त्व कहा है न? पाँच भाव जीव तत्त्व कहे हैं, अत: उदयभाव जीवतत्त्व में जीवतत्त्व है, जड़ नहीं, अजीव नहीं। पाँच भाव - उदय, उपशम, क्षयोपशम... पाँचों ही जीवतत्त्व कहे हैं। पूरा तत्त्व लेना है उन्हें! तो वह जीवतत्त्व है, विकार भी जीवतत्त्व के अस्तित्व में है। ऐसा ध्यान करे तो वह छूट जाता है। ऐसा, तत्त्वानुशासन में विस्तार है, लो! यह ९९ में कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जुलाई-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंक की समर्पण राशि स्व. नाथीबेन उदयभाई जैन के स्मरणार्थ, हस्ते एक मुमुक्षु की ओर से ट्रस्ट को साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

विनम्र अपील

" स्वानुभूतिप्रकाश" मासिक पत्रिका पिछले २५ सालोंसे पूज्य भाईश्री शशीभाई की प्रेरणासे हिन्दी एवं गुजरातीमें मुमुक्षुओंको भेट दी जाती है। जिसमें किसी न किसी पात्र जीवके आत्मकल्याणकी एकमात्र विशाल भावना निहित है।

यदि इस पत्रिका का आपके वहाँ या आपके आसपासके समुदायमें सद्उपयोग न होता हो अथवा संभवित अविनय या अशातना होती नज़र आये तो हमें इसकी जानकारी अवश्य दे या फिर आप पत्रिका एड्रेस समेत हमें वापिस भेज सकते हैं, ताकि हम उसे भेजना बंद कर सके। ट्रस्टकी इस व्यवस्थामें आपका सहयोग अपेक्षित है।

आभार

संपर्क: श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
श्री नीरव वोरा मो: ९८२५०५२९१३

वीतराग सत साहित्य प्रसारक ट्रस्ट से प्रकाशित विपुल सत् साहित्यमें से निम्न साहित्य हाल में उपलब्ध हैं । कोई भी मुमुक्षु, संस्था एवं ग्रंथालयोंको इनमें से जिसकी भी आवश्यकता हो वे संपर्क करें ।

संपर्क: नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

(१) 'कहान रत्न सरिता' (भाग १,२)
('परमागमसार' के विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)

(२) 'सुविधि दर्शन'
(पूज्य भाईश्री द्वारा लिखित 'सुविधि' लेख पर स्वयं उनके ही प्रवचन)

(३) 'राज हृदय' (भाग १,२)
('श्रीमद राजचंद्र' ग्रंथ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके धारावाही प्रवचन)

(४) 'द्रव्य द्रष्टि प्रकाश'
(पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की तत्त्वचर्चा एवं पत्रो)

(५) 'वचनामृत रहस्य'
('बहिनश्रीके वचनामृत' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरोबीमें हुए प्रवचन)

(६) 'छ ढाळा' प्रवचन (भाग १ से ३)
('छ ढाळा' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन)

(७) 'प्रवचन सुधा' (भाग १ से ६)
(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके 'प्रवचनसार' परमागम पर धारावाही प्रवचन)

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंके प्राप्ति स्थान

१) गुरु गौरव
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी स्मारक, सोनगढ़, सौराष्ट्र

२) श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर

आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको (e-copy) - pdf. की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे।

श्री नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :**3910**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur p'00899 9374825041